SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

गीता और नीति प्रधान राजनीतिक शिक्षाः गांधी चिंतन के परिप्रेक्ष्य में

योगेश चंद्र दास, शोधार्थी, शिक्षा विभाग, मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान संकाय
साई नाथ विश्वविद्यालय, राँची, झारखण्ड, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Author
योगेश चंद्र दास, शोधार्थी
E-mail : jogeshdhn14@gmail.com

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 18/01/2025
Revised on : 19/03/2025
Accepted on : 28/03/2025
Overall Similarity : 00% on 20/03/2025

शोध सार

गाँधी का सम्पूर्ण चिन्तन आध्यात्मिक मूल्यों से परिपूर्ण है, तथा राजनीति के प्रचलित निर्वचनों से उनका मत पूर्णरूपेण भिन्न है। गाँधी की दृष्टि में ''नीति विहीन राजनीति'' का कोई अर्थ नहीं है। कर्म से प्रेरित गाँधी चिन्तन में, धर्म को द्वैतीयक नहीं माना गया है, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र का हर चरण उनके लिए आध्यात्म से सम्बद्ध है। मानव सेवा एवं ईश्वर की आराधना में गाँधी के लिए कोई भेद नहीं। अतः संसार एवं कर्म तथा ईश्वर एवं आराधना में भी विरोध नहीं हो सकता। सत्य के अनवरत् अन्वेषण एवं प्रयुक्त नैतिक साधनों के फलस्वरूप ही गाँधी की राजनीति एवं समाजनीति निष्पन्न हुई। वस्तुतः गाँधी ने नीतिपरक मान्यताओं को राजनीति के सार रूप में स्वीकार किया। गाँधी का प्रयास धर्म एवं राजनीति के मध्य समरूपता स्थापित करना था। गाँधी ने धर्म को ऐसी शक्ति माना जो जनसामान्य के वास्तविक हितों की सुरक्षा कर सकता था। दैनिक जीवन से असम्बद्ध धर्म गाँधी की दृष्टि में निरर्थक था। इसी प्रकार गाँधी ने यह माना कि धर्म विहीन राजनीति अपने लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में सफल नहीं हो सकती। इसी कारण गाँधी ने राजनीति को धर्म से समन्वित करने का प्रयास किया। सत्य, अहिंसा एवं दैवीय सर्वोच्चता के सिद्धान्तों के प्रति प्रतिबद्धता से अधिक गाँधी ने अपने राजनीतिक जीवन का कोई पवित्र उद्देश्य नहीं माना।

मुख्य शब्द

गीता, धर्म, राजनीतिक, शिक्षा, नैतिकता, समाज.

गाँधी के लिए सद्गुणी व्यक्ति सर्वोपरि है। उनके लिए ईश्वर, धर्म एवं व्यक्ति समानान्तर है। गाँधी को इनकी पारस्परिकता में किसी प्रकार का संशय नहीं है। चूंकि गाँधी ने ''धर्म'', ''ईश्वर'', एवं ''नैतिकता'' को पर्याय माना है, अतः नैतिकता उनके लिए प्राथमिक है।

यही कारण है कि गाँधी ऐसी राजनीति की कल्पना भी नहीं कर सकते जो नैतिकता से रहित हो। इसी सन्दर्भ में यह स्मरणीय है कि गाँधी ने जीवन का लक्ष्य ''सत्य'' की खोज माना। शक्ति एक कड़ी की भूमिका के रूप में तो गाँधी को मान्य थी, किन्तु राजनीति की प्राथमिकता नहीं। इस कारण, गाँधी ''सत्य'' से विमुख राजनीति को भी स्वीकृति नहीं देते। यह भी स्मरणीय है कि गाँधी वास्तविक जीवन में राजनीति में रुचिवश सक्रिय नहीं हुए वरन् उनका राजनीति में पदार्पण परिस्थितिवश हुआ। सामयिक अनिवार्यताओं के कारण गाँधी ने राजनीति में आना तो स्वीकार कर लिया, किन्तु उन्होंने प्रचलित राजनीति के मूल्यों को स्वीकार नहीं किया। इससे भिन्न गाँधी ने राजनीति को भी ''सत्य की खोज'' से सम्बद्ध कर राजनीति के नवीन आयाम प्रस्तुत करने का प्रयास किया।

गाँधी दर्शन एवं कर्म पर धर्म के प्रभाव का आशय यह है कि गाँधी ने धर्म को पंथ से पृथक मानकर नैतिकता का आधार एवं स्रोत माना। उनकी दृष्टि में समस्त मानव समाज को नैतिक अनुशासन में व्यवस्थित करने का एक मात्र साधन धर्म ही हो सकता है। फलस्वरूप विश्व के अनेक विश्वासों से सहमति के साथ ही गाँधी ने माना कि धर्म के अनेक मार्ग पृथक होते हुए भी एक ही सर्वेश्वर की सर्वोच्चता तथा मान्यता को स्वीकारते हैं। फलस्वरूप गाँधी ने विविध धर्मग्रन्थों, नैतिक संदेशों तथा दर्शन के प्रति किसी प्रकार का भेद–भाव नहीं माना।

गाँधी ने स्पष्ट किया कि सर्वेश्वर का उल्लेख किसी पंथ अथवा औपचारिकता का द्योतक नहीं। उसके अन्तर्गत किसी भी धर्म, मान्यता, विश्वास में इंगित ''सर्वशक्ति'', ''ईश्वर'' की स्वीकारोक्ति है। किसी भी विचारधारा, आस्तिकता, नास्तिकता के प्रतिवाद से परे, सर्वेश्वर को मान्यता देना सभी समाजों की अपरिमित नैतिकता का स्रोत है। गाँधी ने जाति, पंथ, मान्यता, औपचारिकता, विभेदीकरण से मुक्त समता तथा सदाशय से संयुक्त नैतिकता को ही धर्मपरायणता का प्रमाण माना।

दैवीय समकक्षता की प्राप्ति एवं सम्वर्धन हेतु गाँधी की मान्यता थी कि व्यक्ति की प्रकृति, स्वभाव, विचार, कर्म एवं सामाजिकता का रुपान्तरण प्राथमिक है। अवश्य ही विपरीत एवं विकृतिमूलक परिस्थितियाँ एवं प्रभाव व्यक्ति को दिग्भ्रमित करते है। व्यक्ति तत्क्षण सुख से अभिभूत होकर, शाश्वत संतोष तथा सम्पूर्णता से विलग्न बना रहता है। व्यक्ति की मुक्ति द्वारा ही दैवीय समकक्षता प्राप्त हो सकती है। आध्यात्म का एक महत्त्वपूर्ण आयाम यह भी है कि व्यक्ति संकीर्ण 'स्व' से उच्चतर शाश्वत 'स्व' की ओर अग्रसर हो। गीता के इस अनवरत संदेश का गाँधी पर दूरगामी प्रभाव देखा जा सकता है। राजनीति के नवस्वरुपण हेतु गाँधी ने इसी मूल्य को व्यावहारिक जीवन में उतार कर, नीति, नैतिकता एवं मानवीय आग्रहों को स्वाभाविक स्तर प्रदान किया। आत्म–उद्दीपन एवं आत्म–संज्ञान स्तरीय अनुभूति में ही गीता के मूल्यों ने गाँधी के जीवन को नवीन, प्रयोजनशील आधार प्रदान किये।

गाँधी ने गीता में स्पष्ट स्तर पर पाया कि कर्म का अन्य विकल्प नहीं, तथा जब कर्म निस्वार्थ कर्त्तव्यबोध से संयुक्त हो तो जीवन के प्रयोजनों की अभिव्यक्ति स्वतः ही होती है। गाँधी ने इसी कारण गीता को ''कामधेनु'' की संज्ञा प्रदान की जो ''सत्य'' एवं ''अहिंसा'' के अनुकूलन की द्योतक है। निस्वार्थपरक तथा त्यागपूरित मूल्याधारों से अनुप्राणित होकर गाँधी ने स्वीकारा कि शोषण, आरोपण, अन्याय तथा प्रवंचना का निराकरण होना अनिवार्य है। समता, समानता, न्याय एवं वैयक्तिक गरिमा के आधारोंको गाँधी ने अनन्य उपलब्धि से समीकृत माना। अनेक अर्थों में ''सर्वोदय'' समाज की प्रेरणा, कथन तथा मूल्यों को गीता के इस स्रोत में देखा जा सकता है। वैयक्तिक, सामाजिक, व्यवस्थात्मक एवं नैतिक दृष्टि को, गीता से अनुप्राणित होकर, गाँधी ने नव स्वर प्रदान किये। कर्मयोग की प्राथमिकताओं में अनेक वार टॉलस्टॉय, थोरो एवं रस्किन के प्रभाव को उद्धत किया जाता है किन्तु गीता के संदेश में अन्य सिद्धान्तों के प्रेरणा स्रोतों के साथ ही गाँधी ने ''कायिक श्रम'' तथा ''न्यासिता'' के मूल आधारों को भी परिलक्षित माना। इसी मानवीय आग्रह में समाजवादी प्रयोजनों को भी देखना सम्भव है। विश्वत्व एवं सर्वजन बंधुत्व के मूल्यों को गाँधी ने गीता में स्थापित पाया एवं उनकी मान्यता थी कि अर्जन, शोषण एवं आसक्ति का एकमात्र उपाय त्याग, अस्वाद तथा ब्रह्मचर्य में निहित साधना में ही सम्भव है। फलतः गाँधी ने स्वीकारा कि गीता में जिन मानवीय मूल्यों का उल्लेख है वे शाश्वत बोध की सर्वोच्च स्थिति हैं।

गाँधी ने गीता का गुजराती अनुवाद 1929 में, एवं उनके सहयोगी–सहभागी महादेव देसाई ने 1933–34 के

दौरान कारावास प्रवास में उसका अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किया। अनन्य कर्मठ प्यारेलाल ने भी इस कर्त्तव्यपूर्ति में पूर्ण सहयोग दिया। ''अनासक्तियोग'' के इस निर्वचन में गाँधी ने न केवल गीता के आधार, संदेश एवं प्रयोजन का स्पष्टीकरण किया, उनका प्रयास अहंकार एवं अधिकारवाद से व्यापक प्रयोजन सिद्धि का पर्याय है। गाँधी ने विनयपूर्वक स्वीकारा कि तिलक के गीता रहस्य का गूढ़ अध्ययन कर जो प्रेरणा स्रोत वे खोज पाये उसकी नवव्याख्या उनका दायित्व बन गया। तत्पश्चात् गाँधी ने गीता की अनेक व्याख्याओं का अध्ययन किया। राजनीति एवं लोक जीवन में पूर्णतः प्रतिवद्ध रहने के पश्चात् भी यदि गाँधी ने इतनी गम्भीरता से इस चुनौती को स्वीकारा, एवं दायित्व को कर्मण्यता तथा वैचारिक जिज्ञासा से संयुक्त किया, तो इसे सामान्य घटना नहीं कहा जा सकता। उनकी आत्मकथा की ही तरह गीता में भी गाँधी के प्रयोगों, परीक्षणों तथा अनुभवों की समुचित प्रवन्धित गरिमा व्यक्त है।

अवश्य ही, गाँधी का गीता से पहला परिचय एडविन आरनॉल्ड की कृति द साँग स्लेश्चल (1888–89) के माध्यम से हुआ, एवं गाँधी ने निर्णय किया कि गीता के मूल एवं सत्व को साकार कर नवव्याख्या करना सनातन सेवा के समकक्ष होगा। गाँधी ने गीता को आध्यात्मिक एवं कर्मण्यवादी पक्षों की समीकृत कृति माना। विचार निर्माण, मनोदशा, दृष्टिकोण एवं कर्म के स्वरों को गीता के आदेश संदेश के रूप में गाँधी ने देखा। वे गीता को ऐतिहासिक दृष्टि से परखने से पूर्व मानव जीवन के आग्रहों का मंथन मानते थे। अर्न्तद्वन्द से पीड़ित व्यक्ति एवं समाज की वेदना, आकांक्षा अपेक्षा का जो स्वरूप गीता में देखा गया, गाँधी ने उसे व्यावहारिक जीवन में उतारने का प्रयास किया। सम्पूर्ण महाभारत में युद्ध एवं हिंसा की स्वीकृति किसी स्थल पर नहीं किन्तु तनाव, प्रतिशोध एवं हिंसा की प्रवृत्तियों को अन्तर्गत पाकर गाँधी ने गीता के आधार में अहिंसा एवं मानवीय गरिमा के दर्शन किये। व्यक्ति को सम्पूर्णता तथा समता के उद्देश्यों की ओर अग्रसर बनाये रखने का आह्वान गीता का प्रमुख कथन बन गया। कृष्ण के दैवीय स्वरूप एवं आचरण को गाँधी ने इसी संदर्भ में उचित माना। व्यक्ति एवं समाज के आध्यात्मिक आदर्शों तथा प्रयासों को गीता में चरितार्थ किया गया–ऐसी गाँधी की मान्यता थी। स्व–उन्नयन के सृजनात्मक आयामों को गीता में उल्लिखित कर मूल संदेश यही है कि कर्म के फल एवं परिणति के प्रति अनासक्ति स्थापित हो। त्याग, बलिदान एवं परसेवी मूल्यों का कथन गीता को अधिकृत मान्यता प्रदान करता है। मनुष्य का ''दैव–सम'' स्तर पर उन्नयन ही वास्तव में गीता का सत्व कहा जा सकता है।

गाँधी ने स्वीकारा कि अनासक्ति केवल मात्र घोषण अथवा मंतव्य से प्राप्त नहीं हो सकती। सम्भव है कि वेदों का पाठ करने वाले मनीषी सम्पूर्ण रूप से ज्ञानी हों, किन्तु, यह भी सम्भव है कि इस कार्य मात्र से वे न तो आसक्ति से मुक्त होते हैं, न जीवन के अपेक्षित मूल्यों का अर्जन कर पाते हैं। व्यक्ति का शरीर दैवीय स्थल है। इसी तथ्य में मुक्तिबोध है। गीता इसी परिणति की ओर उन्नत संकेत है। यदि ज्ञान प्रतिवद्धता विहीन हो तो अनर्थ निश्चित है। संतोष, सम्पूर्णता तथा मुक्ति का एकमात्र विकल्प सृजनशील कर्मण्यता है।

गाँधी ने गीता में पाया कि त्याग केवल मात्र घोषणा नहीं है, वास्तविक त्याग का प्रमाण यही है कि किसी भी दृष्टि से ''फल'' एवं ''उपलब्धि'' की आकांक्षा, लालसा न हो। कर्म तो अनिवार्य, स्वाभाविक एवं आवश्यक है, किन्तु दायित्व यह है कि कर्म की परिणति के बाबजूद ''फल'' एवं ''उपलब्धि'' से व्यक्ति अनासक्त रहे। महासंदेश में स्पष्ट है कि अनासक्ति ही सर्वोपरि आस्था तथा विश्वास है। गाँधी ने इस सत्य को पहचाना कि धर्म को भौतिक यथार्थ से अलग मान कर किसी प्रश्न का उत्तर प्राप्त नहीं हो सकता। वास्तव में धर्म ही भौतिक जगत को अनुशासित कर सकता है। दैनिक जीवन में जिन आदेशों का अनुपालन करना सम्भव नहीं हो वे धर्म की श्रेणी में नहीं आ सकते। सरलतम शुभ्र जीवन ही शान्ति की प्रामाणिकता है।

गाँधी ने स्पष्ट किया कि गीता का महामन्त्र ''सत्य'' तथा ''अहिंसा'' में अन्तर्निहित है। जब अनासक्ति जीवन का आधार बन जाये तो अवश्य ही असत्य तथा हिंसा की निरर्थकता सिद्ध होना स्वाभाविक है। गाँधी ने स्वीकारा कि यह तर्क प्रस्तुत किया जा सकता है कि गीता का मूल प्रयोजन ष्अहिंसाष की स्थापना नहीं था। वास्तव में, ''अहिंसा'' गीता के रचनाकाल से पूर्व स्थापित हो चुकी थी, ''अहिंसा'' समग्र रूप से जीवन का शाश्वत मूल्य तथा अनुप्रेरणा मानी जा चुकी थी। गीता में इसी प्रयोजन को संजीवनी प्रदान कर अनासक्ति की प्राथमिकता को घोषित

किया गया। अनेक बार माना जाता है कि गीता में हिंसा के औचित्य को ''फल'' के प्रति अनासक्ति से संयुक्त रखा गया है किन्तु, गाँधी के मतानुसार, महाभारत काल में युद्ध, हिंसा तथा रक्तपात तथ अहिंसा के मध्य विरोधाभास के विषय में अधिक चिन्ता का अभाव भी देखा जा सकता है।

निष्कर्ष

गाँधी चिन्तन एवं कर्म में गीता के नैतिक पक्ष की निर्णायकता स्पष्ट रूप में व्यक्त है। ''उपनिषद्'' के आत्मसंयम एवं अनुशासन, सहिष्णुता एवं सदाशय, तथा दया एवं क्षमा के मानवीय संदर्भ को गाँधी ने गीता में स्थापित मान कर ही प्रतीकारात्मक व्यावहारिक दृष्टि से गाँधी ने अर्न्तदृष्टि तथा आत्म–विश्लेषण द्वारा ही व्यवस्थापक स्वराज्य की संगति का चित्रण किया। गीता को दर्शन के जटिल वृत्त से मुक्त कर, गाँधी ने उसके वैयक्तिक तथा सामाजिक परिप्रेक्ष्य को प्रकट किया। तिलक ने भी राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य के अनुकूल गीता के संदेश में कर्म को सर्वोच्च माना। गाँधी ने कर्म, सत्य, अहिंसा तथा अभय की प्राथमिकता को स्वीकारा, क्योंकि इन विचारों का स्रोत अनासक्ति योग में निहित मान कर वे जीवन की सार्थकता के पक्षधर थे।

संदर्भ सूची

1. गांधी, महात्मा (1959) नई तालीम की ओर, *आवृत्ति*, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, पृ. 36–38।
2. गांधी, महात्मा (1958) शिक्षा की समस्या, *आवृत्ति*, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, पृ. 23–24।
3. गांधी, महात्मा (1991) आत्मकथा, *आवृत्ति*, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, पृ. 151–53।
4. गांधी, महात्मा (1956) सच्ची शिक्षा, *आवृत्ति*, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, पृ. 75–76।
5. गांधी, महात्मा (1962) बुनियादी शिक्षा, *आवृत्ति*, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, पृ. 112–114।
6. गांधी, महात्मा (1959) बापू की छाया में, *आवृत्ति*, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, पृ. 35–36।
7. गांधी, महात्मा (1973) हिन्दस्वराज, *आवृत्ति*, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, पृ. 118–119।

****